IOSR Journal Of Humanities And Social Science (IOSR-JHSS)
Volume 24, Issue 7, Ser. 1 (July. 2019) 87-90
e-ISSN: 2279-0837, p-ISSN: 2279-0845.
www.iosrjournals.org

गुप्तोत्तर काल में शूद्रो की धार्मिक, आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति पर समीक्षा

डा बीरेन्द्र प्रताप सिंह
अम्बिका राम देवी डिग्री कॉलेज रमना तौफीर, तहसील हरैया, जनपद बस्ती

सारांश

सातवीं शताब्दी का भारतीय सामज वर्ण और जातिप्रथा के आधर पर संगठित था। चारों वर्णो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र में धार्मिक अनुष्ठानजनित पवित्राता थी । शूद्र शिल्प और भृति के अतिरिक्त कृषिकर्म करते थे । कुछ क्षेत्रों सिद्ध में शूद्र शासक भी होते थे । मतिपुर का राजा भी चीनी यात्री के अनुसार शूद्र ही था। शूद्रों की अनेक उपजातियाँ भी थी, जैसे निषाद, पारशव, पुक्कुस इत्यादि । अस्पृश्य अंत्यज जातियों का उल्लेख भी हेनसांग करता है । ऐसी जातियों में चांडाल, मतप, श्वपाक, कसाई, जल्लाद आदि प्रमुख हैं । अस्पृश्यता की भावना बलवती थी । चीनी यात्री का कथन है कि चंडाल, मेहतर आदि अछूत जातियाँ नगर के बाहर ऐसे मकानों में रहती थी, जिन्हें विशेष चिन्हों से पहचाना जा सकता था। उनका स्पर्ष और संसर्ग वर्जित था ।

मूल शब्द –अस्पृश्यता, सेवावृत्ति, अंत्यज, भृतक, चर्मकार, चांडाल, श्वपाक, पारशव, पुक्कश, तंतुवाय ।

प्रस्तावना :–

गुप्तोत्तर काल में शूद्रों की सामाजिक, आर्थिक जीवन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिलते हैं । तत्कालीन साहित्यक एवं पुरातात्विक स्रोत इस विषय पर प्रकाश डालते हैं। गुप्तोकालीन समाज वर्ण एवं जाति व्यवस्था पर आधारित था । समाज में चार प्रमुख वर्गों ब्राह्ममण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रद्ध के अतिरिक्त अनेक जातियाँ एवं उपजातियाँ भी थी । विभिन्न वर्गों के लिए आवास, न्याय, दंड एवं उत्तराधिकार संबंध नियम बनाए गए । उदाहरणस्परूप वृहसंहिता के अनुसार ब्राह्मणों के घरो में पाँच, क्षत्रियों के चार, वैश्यों के तीन तथा शूद्रों के घरों में दो कमरे होने चाहिए । कमरों के आकार, रंगों के प्रयोग और सूद की दरें भी वर्ण के अनुसार ही निर्धरित की गई । इसके बावजूद वर्ण व्यवस्था सुचारू रूप से हमेशा नहीं चली । संकटकाल में निर्धरित व्यवसाय को छोड़कर दूसरा व्यवसाय अपनाने की अनुमति स्मृतिकारों ने दी । वृहस्पति के अनुसार संकटकाल में ब्राह्मण, दासों और शूद्रों का भी अन्न ग्रहण कर सकता था । शूद्र सेवावृति के अतिरिक्त शिल्प, व्यवसाय – वाणिज्य भी कर सकते थे । कुछ शूद्रों ने तो सैनिक कार्य भी किए । इस प्रकार वर्ण व्यवस्था का बच्न डीला पड़ रहा था। शूद्रों की स्थिति अब पहले से अच्छी थी । अस्पृश्यता की भावना प्रचलित था अछूतों का स्पर्श वर्जित था। काहियान के विवरण से ज्ञात होता है कि अछूत चांडालद्ध वस्तियों से बाहर रहते थे और निकृष्ट कर्म करते थे ।

प्राचीनकाल में दासता सिद्धान्त – षूद्रों की उत्पत्ति के संबन्ध में दासता का सिद्धान्त अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सिद्धान्त रूप में चार वर्ण, गुण–कर्म के अनुसार है। ब्राह्मण का कार्य ज्ञान–दान, क्षत्रिय का कार्य रक्षा, वैष्य का उद्योग और षूद्र का श्रम है।1 भारतीय समाज में समय के साथ–साथ परिवर्तन आया। वर्ण व्यवस्था विघटित होने लगी, कर्म पर आधारित वर्ण–व्यवस्था, जन्म पर आधारित होने लगी। उत्तर वैदिक काल में आर्य जाति के सदस्य के रूप में षूद्र ने विभिन्न कर्मो में भाग लेने के अपने जनजातिय अधिकार को उस समय भी कायम रखा, जब उसें दास की कोटि में रख दिया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि इस लम्बे उत्तर वैदिक काल में धीरे–धीरे वर्ण व्यवस्था ने ठोस रूप धारण कर लिया था। इस व्यवस्था का सबसें अधिक प्रभाव भारत के मूल निवासियों पर पड़ा, जिन्हे आर्य सभ्यता के ग्रन्थों मे अनार्य, दस्यु, दास आदि से सम्बोधित किया गया है। इन मूल निवासियो के एक बहुत बड़े वर्ग ने आर्यो की सम्प्रभुता स्वीकार कर ली थी। जैसा कि प्रत्येक देष मे होता है कि आक्रमणकारी विजेता का सामना जनता का थोड़ा भाग ही करता है, अधिकांष भाग बिना अधिक विरोध के आक्रमणकारी विजेता के सामने अपने को पराजित मान लेता है। भारत मे भी ऐसा हुआ होगा। आर्यो ने सभी मूलनिवासियों को गुलाम और षूद्र वर्ण बना दिया। उत्तर वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था का स्वरूप बहुत ही कठोर हो गया था। जिसका कुप्रभाव सबसे अधिक यहॉ के पराजित हुए लोगो अर्थात् मूलनिवासियों पर पड़ा। आर्यो ने यहॉ के मूलनिवासियों पर पूरी तरह कब्जा कर लिया और गुलामों जैसी जिन्दगी जीने के लिए मजबूर कर दिया।2 उत्तर वैदिक काल के पष्चात् भारत में वर्ण धीरे–धीरे जाति में बदल गया, लेकिन षूद्र वर्ण के विकास में एक भारी अन्तर आया। जहॉ एक ओर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैष्य वर्ण से जाति बदलकर भी तीन जातियों से अधिक नहीं हुई वही दूसरी ओर षूद्र अस्पृष्य कार्यो के आधार पर अनेक जातियों में बॅट गए।3 उत्तर वैदिक काल के बाद षूद्रों के विषय में अध्ययन करने के लिए ब्राह्मण ग्रन्थों के अतिरिक्त बौद्ध ग्रन्थ और जैन ग्रन्थों का सहारा लिया जा सकता है। षूद्रों के विषय में कुछ प्रत्यक्ष जानकारी धर्मसूत्रों से, थोड़ी बहुत जानकारी पालि ग्रन्थों से और उससे भी कम जानकारी जैन

ग्रन्थों से मिलती है। बौद्ध ग्रन्थों में षूद्र को समाज का एक वर्ग माना गया है, षूद्र सेवक वर्ग के थे, यह बात उत्तर वैदिक काल में दिखाई पड़ती है। किन्तु इस काल में धर्मसूत्रों में जोर देकर कहा गया है कि षूद्र को तीन उच्च वर्णो की सेवा करके अपने आश्रितों का भरण–पोषण करना है। षूद्र समुदाय का अधिकांष भाग संभवतः कृषि कार्य में लगा रहता था। धर्मसूत्रों के अनुसार कृषि वैष्यो का विषय था, जो स्वतंत्र किसान थे और उपज का एक हिस्सा राज्य को कर के रूप में चुकाते थे। किन्तु इस तथ्य से कि षूद्रों को जमीन की मालगुजारी नही चुकानी पड़ती थी, जिससे पता चलता है कि वे भूमिहीन मजदूर थे। मक्झिम निकाय के निकाय के एक परिच्छेद में चारो वर्णों के उपार्जन का वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है, जिसमें ब्राह्मण अपना जीवनयापन भिक्षा से, क्षत्रिय तीर–धनुष के प्रयोग से, वैष्य खेती, गृहस्थी और पषुपालन से तथा षूद्र हॅसिया से फसल काटकर और उसे अपने कन्धे पर बहॅगा से ढोकर करता था।

चार वर्णों के अतिरिक्त अलवरूनी अंत्यजों का भी उल्लेख करता है । उनकी स्थिति शूद्रों से नीची थी । वे विभिन्न प्रकार के कार्यों और व्यवसायों में संलग्न थे । उसकी गणना किसी वर्ण या जाति में नहीं होती थी। अंत्यजों की आठ श्रेणियों का उल्लेख अलवरूनी करता है । इनमें चर्मकार, जुलाहा, टोकरीबुनने वाला, वाजीगर, मछुआरे, शिकारी इत्यादि में वैवाहिक संबंध होते थे । चार वर्ण के लोग इनके साथ नहीं रहते थे । अंत्यजों को नगरों और गॉवों के बाहर रहना पड़ता था। हादी, डोम, चांडाल और बड़हातु की गणना किसी जाति या व्यावसायिक संघ में नहीं होती थी । उन्हें एक अलग वर्ग माना गया था । उन्हें सामान्यतः शूद्र पिता और ब्राह्मण माता का अवैध संतान माना जाता था । उन्हें गंदा काम करना पड़ता था ।

गुप्तोत्तर कालीन भारत में शूद्रों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति :–

पूर्व मध्यकालीन भारत में अछूतों, चंडालों, अस्पृश्य जातियों अर्थात् शूद्रों की स्थिति के अध्ययन का मुख्य स्रोत कौटिल्य का अर्थशास्त्रा है और उसके पूरक हैं मेगास्थनीज रिपोर्ट के कुछ अंश तथा अशोक के उत्कीर्ण लेख । शूद्र वर्ण के कृत्यों का निरूपण करने में कौटिल्य ने धर्मशास्त्रा के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है। उनका कहना है कि शूद्र का निर्वाह द्विजों की सेवा से होता है । किन्तु ये शिल्पियों, नर्तकों, अभिनेताओं आदि का व्यवसाय करके भी अपना निर्वाह करते हैं। ये व्यवसाय स्पष्टतया स्वतंत्रा थे और उनमें द्विजों की सेवा करना आवश्यक नहीं था ।

कौटिल्य ने धर्मसूत्रा की जिस पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया है, उससे यह प्रतीत होता है कि शूद्रों को अपनी जीविका के लिस पूर्णतया उच्च वर्ण के मालिकों पर निर्भर रहना पड़ता था । अधिकाशं शूद्र पहले ही की तरह, कृ षि मजदूरों और दासों के रूप में काम करते रहे। धर्मसूत्रों से ज्ञात होता है कि दासों को घरेलू कार्यों में लगाया जाता था । कौटिल्य ही एकमात्रा और प्रथम ब्राह्मण लेखक है जिनसे पता चलता है कि दासों को बड़े पैमानों पर कृषि उत्पादन कार्य में लगाया जाता था । मौर्य साम्राज्य में दासों, कर्मकारों, शिल्पियों और आदिवासियों का, जो कि स्पष्टतया शूद्र वर्ण के थे बहुत बड़ा नियोजक था । इस दृष्टि से इस काल का कृषि उत्पादन संगठन ग्रीस और रोम के संगठन से कुछ हद तक मिलता–जुलता था ।

मेगास्थनीज के इंडिका और कौटिलय के अर्थशास्त्रा से ज्ञात होता है कि मौर्य काल में शूद्रों की आर्थिक स्थिति में बहुत से परिवर्तन हुए । पहली बार शूद्रों को, जो अभी तक कृषि मजदूर थे, राज्य की भूमि में बटाईदारी भी दी जाने लगी । किन्तु कृषि उत्पादन के लिए राज्य की ओर से शूद्रों को बहुत बड़े पैमाने पर दासरों और श्रमिकों के रूप में नियोजन किया जाता था। नीचे दर्जे के लोग या तो खास–खास किसानों के अधन अथवा स्वतंत्रा रूप से काम करते थे और गॉवों में रहते थे ।

गुप्तकाल में अछूत, दलित, अस्पृश्य, डोम अर्थात् शूद्रों की स्थिति के अध्ययन के लिए विष्णु याज्ञवलक्य, नारद, वृहस्पति और कात्यान स्मृतियॉं मुख्य स्रोत हैं । इनमें याज्ञवल्क्य स्मृति सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रतीत होती है क्योंकि बाद में चलकर उत्तर भारत में यही प्रमाण के रूप में अपनाई गई। इस स्मृति में शूद्रों के विख (मनुस्मृति में किए गए अतिवादी प्रावचनों को या तो खंडित कर दिया गया है या उनकी अवहेलना कर दी गई है और उसमें ब्राह्मणों के लिए दागने अंकनद्ध, और देश से निकालने निष्कासन का दंड विहित किया गया है । कामदंक के नीतिसार, भरत के नाट्यशास्त्रा, वात्सयायन के कामसूत्रा, अमर सिंह के अमरकोश और वाराहमिहिर की वृहत् संहिता जैसे तकनीकी ग्रंथों से भी इस काल में शूद्रों की स्थिति के विषय में कापफी जानकारी मिलती है ।

उत्कीर्ण लेखों में वर्ण के रूप में शूद्रों का उल्लेख नहीं है, किन्तु करदायी किसानों और कारीगरों का बार–बार उल्लेख हुआ है और कारीगरों के संघ की भी चर्चा है । इससे हमें शूद्रों की आर्थिक स्थिति में हुए परिवर्तनों का स्वरूप पता लगाने में सहायता मिलती है । सातवी शताब्दी ई. के पूर्वा(में हुआन–चाई ने शूद्रों को खेतिहरों के वर्ग के रूप में वर्णित किया है। नृसिंह पुराण से इस वर्णन की पष्टि होती है । वहॉं कृषि को शूद्र का कर्म बताया गया है । किन्तु प्रतीत होता है कि यह महत्वपूर्ण परिवर्तन गुप्तकाल हुआ होगा । कृषक वर्गों में बहुत बड़ा भाग शूद्र का है।

इस काल में हमें शूद्र राजाओं की चर्चा मिलती है, जैसे सौराष्ट्र, अवति, अवुर्द और मालवा के । इनके साथ–साथ परंपरागत शूद्र, आभीर और मलेच्छ राजाओं का भी उल्लेख मिलता है, जो सभी सिंधु और काश्मीर प्रदेशों में शासन करने वाले बताए गये हैं । पार्जिटर ने उनका समय चौथी शताब्दी ईसवी सन् बताया है । परन्तु उन्हें जो शूद्र

कहा गया है इसका कारण यह नहीं कि ये शूद्र वंश के थे, बल्कि इसलिए कहा गया है कि इन जनजातिय या विदेशी शासकों ने ब्राह्मणों को विशेष संरक्षण नहीं प्रदान किया था और वे ब्राह्मणच्र के अनुयायी नहीं थे ।

गुप्तकाल में डोम जाति के लोग उत्तर भारत में बहुत बड़ी तादाद में अदूत माने गये । संभवतया गुप्तकाल में जाति के रूप में आविर्भूत हुए । जैन स्रोत उन्हें अपेक्षित वर्ग का मानते हैं। शायन ये एक आदिवसी कवीले जनद्ध के लोग थे, जो ब्राह्मण समाज के निचले वर्गों में मिला दिए गए। किरात, शबर और पुलिंद ये वन्य जातियाँ म्लेच्छों के साथ अमरकोश में शूद्र वर्ग में समाविष्ट की गई है जिससे प्रकट होता है कि आदिवासी जनसमुदाय बड़ी संख्या में शूद्र सामुाय में लीन होते जा रहे थे। ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल में न केवल अस्पृश्यों की संख्या में वृाी हुई, बल्कि अस्पृश्यता की प्रथा भी कुछ दृढ़ हुई । पफाहियान ने बताया है कि जब कोई चंडाल किसी नगर या बाजार के भीतर प्रवेश करता था तो वह एक लकड़ी को पीटता चलता था, ताकि लोग पहले ही समझ जाएँ कि चंडाल आ रहा है और उसके स्पर्श से बचने की कोशिश करें किन्तु इस अस्पृश्यता नियम का पालन मुख्यतया चंडाल के विषय में किया जाता था । ऐसा कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिलता है कि डोम अस्पृश्य माने जाते थे। इसी प्रकार इसका भी कोई प्रमाण नहीं मिलता है कि डोम्ब अस्पृश्य माने जाते थे । इसी प्रकार इसका भी कोई प्रमाण नहीं मिलता है कि चर्मकार, जो परवर्ती काल में अछूत समझे जातने लगे, इस काल में भी वैसा माने जाते थे । चंडालों और अन्य अछूतों को छोड़कर ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता है कि कुछ शूद्र जातियों का पानी निषि(था । मृच्दकटिक में कहा गया है कि ब्राह्मण और शूद्र एक ही कुएँ से पानी भरते थे।

सर्वप्रथम शांतिपर्व में घोषणा की गई है कि चारों वर्णों को वेद सुनाना चाहिए और शूद्र से भी ज्ञात प्राप्त करना चाहिए । मनु के विधनों के नितान्त विस(है जिन्होंने ऐसे मामलों में कठोर दंड बताया है । शांतिपर्व का यह उपदेश शूद्रों के वेद यह विवन पढ़ने के अधिकार के विख(व(मूल धरणा के कारण अनसुना कर दिया गया होगा । परन्तु इतिहास–पुराण पड़ने के द्वार शूद्रों के लिए वस्तुतः खोल दिए गए । विद्या की दूसरी शाखा नाट्यशास्त्रा, जिसका द्वार शूद्रों के लिए खुला हुआ था, उसे पंचमवेद कहा गया है जिसे चारो वेदों के सार से रचा गया है और जिसका उपयोग सभी जातियों के लोग कर सकते हैं। इतना ही नहीं, योग और सांख्य दर्शन भी, जो संभवतया गुप्तकाल में ही अपने चरम रूप में विकसित हुए थे, शूद्रों के लिए वर्जित नहीं थे।

गुप्तकाल में भी कई शिक्षित शूद्रों के उदाहरण दिखाई पड़ते हैं । याज्ञवल्क्य के एक श्लोक से प्रकट होता है कि मृतकों के लिए भी अध्यापक होते थे । मृच्छकटिक में न्यायाधिश शकार को पफटकारता है– अरे नीच, तुम वेद की बात कर रहे हो, और तब भी तुम्हारी जीभ नीचे न गिरी । पिफर भी इसमें कोई संदेह नहीं कि उच्च वर्णों की तुलना में शूद्रों का सांस्कृतिक स्तर नीचे था । उदाहरणार्थ, नाटकों में स्त्रियों और निम्न जाति के पात्रा गँवारों की भाषा प्राकृत बोलते थे, जबकि उच्च वर्णों के पात्रा शिक्षितों की परिष्कृत भाषा संस्कृत बोलते थे लेकिन नाट्यशास्त्रा में कहा गया है कि रानियाँ, वेश्याएँ और कलाकार महिलाएँ परिस्थिति के अनुसार संस्कृत बोल सकती हैं । कभी–कभी प्राकृत की विभिन्न बोलियों के प्रयोग में भी जातीय स्तर का विचार किया जाता था । नाटकों में द्य ऊँची हैसियत के पात्रा सौरसेनी बोलते थे और नीचे पात्रा मागचे प्राकृत । इन सबों से पता चलता है कि निम्न वर्गों को लिखने–पढ़ने की शिक्षा नहीं दी जाती थी, जिससे वे परिमार्जित भाषा संस्कृत बोल सके ।

गुप्तोत्तर काल में कई सुधरवादी विचारथराओं, विशेषकर वैष्णव सम्प्रदाय का उदय हुआ, जिससे बहुत हद तक शूद्रों को धर्मिक समता प्राप्त हुई । वैष्णव धर्म इस काल में विकास की चोटी पर पहुँच गया था, जब न केवल उत्तर भारत में अपितु दक्षिण और पश्चिम भारत के कई भागों में इस सम्प्रदाय के अद्वितीय प्रभाव को प्रमाणित करने वाले पुरालौकिक, मुद्रात्मक और मूर्ति संबंध अभिलेख भारी संख्या में मिलते हैं । महाभारत और पुराणों में इस सम्प्रदाय के जो सि(ति प्रतिपादित हैं, उनसे प्रकट होता है कि ब्राह्मण धर्म की प्राचीन कट्टरपंथी परंपरा की भाँति इस वैष्णव सम्प्रदाय ने शूद्रों और अस्पृश्यों के लिए अपना द्वारा बंद नहीं रखा, बल्कि उन्हें भी ईश्वर को जानने और मोझ प्राप्त करने का अधिकार दिया । वैष्णव ग्रंथों में इस बात पर हमेशा जोर डाला जाता रहा कि कृष्ण, नारायण या वासुदेव की भक्ति के द्वारा स्त्रियाँ और शूद्र भी मुक्ति पा सकते हैं। भगवान को यह घोषित करते हुए चित्रित किया गया है कि ब्राह्मण से लेकर श्वपाक तक सभी मेरी भक्ति से पवित्रा हो जाते हैं। यदि अत्यज एक बार भी ईश्वर का नाम लेता है तो वह जन्म मरण के बंधन से मुक्त हो जाता है ।

लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं है कि गुप्तोत्तर काल में शूद्रों के धर्मिक अधिकारों में वृाी हुई और कई कर्मानुष्ठानों के विषय में उन्हें तीनों उच्च वर्णों के समकक्षता मिली। ऐसा मत व्यक्त किया गया है कि शूद्रों के आध्यात्मिक उत्थान के पीछे ब्राह्मणों का स्वार्थ काम कर रहा था क्योंकि वे चाहते थे कि अधिक से अधिक लोग ब्राह्मणीय कर्मों का अनुष्ठान करें । किन्तु पूर्वकाल में भी तो ब्राह्मणों का ऐसा स्वार्थ रहा होगा, जबकि ऐसी प्रवृत्ति का आभास बहुत कम मिलता है । वास्तव में शूद्रों के धर्मिक अधिकारों में वृद्धि (उनकी भौतिक स्थिति में यज्ञ कराने में समर्थ हुए क्योंकि यज्ञ कराने की योग्यता व्यववहन क्षमता के साथ निकटतः संव(मानी जाती थी, जो स्वाभाविक ही है ।

निष्कर्ष :–

गुप्तोत्तरकाल में अछूतों, दलितों, चंडालों, डोमों, अस्पृश्य जातियों अर्थात् शूद्रों की स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। इस काल में न केवल मजदूरों, कारीगरों और भारवाहकों की मजदूरी की दरें बढ़ी, बल्कि दास और मजदूर लोग घेरे घेरे बटाईदार और किसानें होते जा रहे थे । सातवीं सदी तक पहले–पहले शूद्र बड़े पैमाने पर किसान के रूप में दिखलाई पड़ते हैं । यह परिवर्तन शूद्रों की राजनीतिक सहविधिक स्थिति में व्यापक रूप में प्रतिपफलित हुआ है। शांतिपर्व में शूद्र मंत्री नियुक्त करने का जो उपेश दिया है, इसको तो अधिक महत्व नहीं भी दिया जा सकता है । किन्तु इसमें संदेह नहीं कि शिल्पी संघों के प्रधान जिला प्रशासन के कार्य से जुड़े थे, और संकट की घड़ियों में शूद्रों को शस्त्रा उठाने का अधिकार मिल गया था । वर्ण विषयक कानूनों में कुछ ढिलाई आई और शूद्रों के प्रति बरते जानेवाले कई निष्ठुर नियम रद्द किए गए ।

गुप्तोत्तर काल में शूद्रों के धर्मिक अधिकार में कापफी वृीि हुई । हाँ, अस्पृश्यों की सामाजिक स्थिति पहले से भी अधिक बुरी हुई । यद्यपि वे सि(ति शूद्र माने जाते थे, किन्तु सभी व्यावहारिक विषयों में वे पृथक समुदाय ही थे । पिफर भी ऐसा सोचना गलत होगा कि गुप्तकाल में शूद्रों का काई अन्य वर्ग भी सामाजिक दृष्टि से अधेगत था, भोजन और विवाह के रिवाज के बारे में इसका कोई साक्ष्य नहीं मिलता है । जहाँ तक शिक्षा का प्रश्न है, शूद्रों को रामायण, महाभातर और पुराण सुनने का और कभी–कभी वेद सुनने का भी अधिकार निस्संदेह रूप से मिल गया था। सभी बातों पर विचार करते हुए हम कह सकते हैं कि गुप्तोत्तर काल में शूद्रों की स्थिति में जो आर्थिक, राजनीतिक, सहविधिक, सामाजिक और धार्मिक परिवर्तन हुए, वे उक्त समुदाय की बदलती हुई सामाजिक स्थिति के सूचक है ।

सन्दर्भ सूची :–

०१. आर.एस. शर्मा, शोसल चेंज इन अर्ली मेडिबल इंडिया सर्का एडी ५००–१२००६

०२. आर. एस. शर्मा, शूद्राज इन संशिएट इंडिया, परिशिष्ट–२

०३. पाणिनि टप् २०६२५

०४. अर्थशास्त्रा, ४

०५. आर.एस.शर्मा, शूद्राज इन संशिएट इंडिया, पृ० १६७–७८

०६. जटाशंकर प्रसार मिश्र, अलबेरूनी के भारत का राजनीतिक और सामाजिक अध्ययन, काशी हिन्दू वि० वि० वाराणसी, १६६३

०७. आर भूषण, ऍसिएंट इंडियन हिस्ट्री, श्री पवित्शंस एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली – २०१०

०८. के. एल. चंचरीक दलितस् इन एसियंट एण्ड मेडिबल इंडिया, श्री एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, २०१०

६. एस. गुप्ता, भारत में जाति व्यवस्था, सूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली– २०११

१०. रश्मि पाठक, प्राचीन भारत का समाजिक इतिहास, अर्जून पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली २०१२

११. देव प्रकाशन, जातिगत सामाजशास्त्रा, ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, २०१७

१२. के.सी. जैन, प्राचीन भारत का इतिहास ६५० ई० में से १२०० ई० तक यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, २०१२

१३. के. एल. चंचरीक, भारतीय दलित जाति कोश, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली २०१२.